परमात्मा की सहज प्राप्ति

स्वामी निरंजनजी

परमात्मा की सहज प्राप्ति

स्वामी निरंजनजी

प्रकाशक : **निरंजन बुक् ट्रष्ट**
प्रथम मुद्रण : गुरु पुर्णिमा, २०१२
द्वितीय मुद्रण : जन्माष्टमी २०१२
मुद्रण एवं अलंकरण : **दिव्य मुद्रणी,** भुवनेश्वर - २ (उड़िशा)
मूल्य : ₹ 10/-

भूमिका

प्रायः देखा जाता है की व्यक्ति आँखों के ऊपर जिस रंग का चश्मा, ग्लास लगा होता है उसे समस्त दृश्य उसी एक रंग से रंगा हुआसा भासित होता है ।

इसी प्रकार जिसका मन कामी, क्रोधी, लोभी, मोही, चोर, व्यभिचारी, असत्यवादी होता है उसे सभी जन समुदाय उसी प्रकार के दृष्टि गोचर होते हैं । इसलिये कहा जाता है जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि ।

जब कोई साधक विवेक, वैराग्य, शम, दम, तितिक्षा, श्रद्धा एवं मुमुक्षुता युक्त किसी सद्गुरु श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ के शरणापन्न हो जाता है तो फिर उसकी ब्रह्म दृष्टी खुल जाती है फिर उसे सर्वत्र एक ब्रह्म ही प्रतीत होता रहता है । ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ अन्य नहीं दिखाई देता है । उसे ब्रह्म पाने के लिये कुछ करना नहीं पड़ता तब उसका सहज ब्रह्ममय जीवन हो जाता है जो साधक के जीवन में साधन रूप होता है ।

जब अर्जुन के मन में नाम, रूप, जाति, आश्रम, परिणाम, जन्म–मृत्यु, कर्ता–भोक्ता, पाप–पुण्य, स्वर्ग–नरक का द्वन्द्व पैदा हो रहा था ऐसी अवस्था में वह भगवान् के शरणापन्न होकर अपने कल्याण की प्रार्थना करता है तब भगवान् उसे परम शान्ति का उपदेश करते हैं । जिसे जानकर अर्जुन का सभी भ्रम और संशय विपर्यय बुद्धि शान्त होगया । अतः मुमुक्षुओं से निवेदेन करता हूँ कि आप इस **'परमात्मा की सहज प्राप्ति'** अति लघु पुस्तिका का एकाग्रता पूर्वक पठन एवं चिन्तन कर परमात्मा के विराट् स्वरूप को अपने सहित जान सोऽहम् भावना द्वारा कल्याण को प्राप्त करे ।

स्वामी निरंजन

मैं कहाँ कहाँ हूँ?

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः ।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ।।२/७ गीता

हे प्रभो ! बुद्धि की मन्दता के कारण या विषम परिस्थितियों के कारण धर्म के सम्बन्ध में, मैं कर्तव्य तथा अकर्तव्य का निर्णय नहीं कर पा रहा हूँ । अतः मेरे लिये जो कल्याण कारक सरल, सुगम साधन है, उसे बतलाने का कृपा करें ।

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ।।
७/२ गीता

हे प्रिय ! मैं तेरे लिये इस विज्ञान सहित तत्त्वज्ञान को सम्पूर्ण रूप से कहूँगा, जिसको जानकर संसार में फिर और कुछ भी जानने योग्य , पाने योग्य शेष नहीं रहता ।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ।।

२/१६ गीता

असत् वस्तु की तो केवल व्यावहारिक सत्ता है, किन्तु उसका अस्तित्व तो रस्सि में सर्प की तरह प्रातिभासिक सत्ता मात्र ही है । सत्य आत्मा सर्व काल, सर्व देश, सर्व रूप में होने से उसका तीनों कालों में अभाव नहीं है । इस प्रकार इन दोनों का ही निर्णय तत्त्वदर्शी ज्ञानी पुरुषों के द्वारा ही किया गया है ।

हे अर्जुन ! तू अपने को अविनाशी आत्मा ही जान तथा इस नाशवान् शरीर का अभिमान मन से त्याग और सुखी हो जा ।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहंत्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।।

१८/६६ गीता

हे अर्जुन ! तू शरीर के समस्त बाह्य एवं भीतरी धर्म–कर्म भाव का तथा मन से कर्ताभाव का परित्याग करके मैं इन सबका द्रष्टा, साक्षी आत्मा हूँ । इस परमधर्म के चिन्तन

परायण हो जा, तो तुझे किसी प्रकार के पाप नहीं लगेगा । तु समस्त पाप–बन्धन से मुक्त हो जावेगा ।

देहो देवालय: प्रोक्त: स जीव: केवल: शिव:।
त्यजेदज्ञान निर्माल्यं सोऽहं भावेन पूजयेत्।।

२/१ मैत्रेय उप

हे आत्मन् ! यह सब जीवोंका शरीर तो देवालय है और उसमें यह मैं–मैं कहनेवाला जीव केवल परमात्मा है, इसलिये संसार में भटकाने वाले इस देहाभिमान रूप अज्ञान को छोड़ कर देह में स्थित नित्य शुद्ध परम पवित्र परमात्मा मैं ही हूँ ऐसा मनोभाव बनाने का अभ्यास करते रहना ही परमात्मा की सच्ची पूजा है।

अभेद दर्शनं ज्ञानं ध्यानं निर्विषयं मन:।
स्नानं मनोमल त्याग: शौचमिन्द्रियनिग्रह:।।

२/२ मैत्रेय उप.

जीव और परमात्मा में भेद न समझना ही ज्ञान है। मन व इन्द्रियों का सम्बन्ध न होना ही मन की शुद्धि है और मनका इन्द्रियों से सम्बन्ध होना ही मन की अशुद्धि कहलाती है। सत,रज,तम इन तीनों गुणों के कार्यरूप इन्द्रियों से मनका

असंग होजाना ही ध्यान है । देहाध्यास तथा कर्ता भाव का त्याग करना ही आत्म दर्शन अर्थात् आत्म साक्षात्कार है। परमात्मा और जीवात्मा के एकीभाव के सम्बन्ध में निश्चयात्मक बुद्धि का जाग्रत होना ही सहज ध्यान या सहज समाधि है ।

अहं कृत्स्नस्य जगत: प्रभव: प्रलयस्तथा।।

७/६ गीता

मैं सम्पूर्ण जगत् का उत्पत्ति,स्थिति,लय का मूल कारण हूँ ।

भूमिरापोऽनलो वायु: खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना कृतिरष्टधा।। ७/४ गीता

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे परम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्।। ७/५ गीता

पृथ्वी, जल,अग्नि,वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार यह आठ प्रकार से विभाजित मेरी अपरा जड़ प्रकृति है और हे आत्मन् ! दूसरी मेरी चेतन जीव रूपा परा प्रकृति है जिसके द्वारा यह सम्पूर्ण जगत् धारण किया जाता है, इसलिये तू मुझसे भिन्न नहीं है ।

मत्त: परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव।। ७/७ गीता

मुझ से भिन्न कोई दूसरा परम कारण नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत् सूत्र में सूत्र के मनियों के समान मुझ से अभिन्न अर्थात् मुझ में गुथाँ हुआ है। इसलिये तुझमें मुझमें कोई भेद नहीं है ।

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययो:।
प्रणव: सर्व वेदेषु शब्द: खे पौरुषं नृषु ।। ७/८ गीता

मैं जल में रस हूँ, चन्द्रमा और सूर्य में प्रकाश हूँ, सम्पूर्ण वेदों में ओंकार हूँ, आकाश में शब्द और पुरुषों में पुरुषत्व हूँ ।

पुण्यो गन्ध: पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपाश्चास्मि तपस्विषु ।। ७/९ गीता

मैं पृथ्वी में पवित्र गन्ध और अग्नि में तेज हूँ तथा सम्पूर्ण भूतों में उनका जीवन हूँ और तपस्वियों में उनका तेज और तप हूँ ।

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्।। ७/१० गीता

हे आत्मन्! सम्पूर्ण भूतों का सनातन बीज मुझको ही जान । मैं बुद्धिमानों की बुद्धि और तेजस्वियों का तेज हूँ ।

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।। ७/११ गीता

सब भूतों में धर्म व शास्त्र के अनुकूल पवित्र काम भी मैं हूँ ।

अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर । ८/४ गीता

हे आत्मन् ! इस शरीर में मैं वासुदेव ही अन्तर्यामी रूप से विद्यमान् रहता हूँ ।

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ।। १३/२ गीता

हे अर्जुन ! तू सब क्षेत्रों में क्षेत्रज्ञ अर्थात् जीवात्मा मुझको जान । क्षेत्र क्षेत्रज्ञ का अर्थात् विकार सहित प्रकृति का और विकार रहित पुरुष को जो तत्त्व से जानता है, वही ज्ञान है । ऐसा जहाँ विचार किया जाता है, वही सच्चा सत्संग

है । ऐसा जड़–चेतन, क्षेत्र–क्षेत्रज्ञ, द्रष्टा–दृश्य, आत्मा–अनात्मा, शव–शिव का ज्ञान जिस ग्रन्थ में पाया जाता है, वही सद्ग्रन्थ है एवं ऐसा उपदेश कर्ता संत ही सच्चा सद्गुरु है, ऐसा मेरा मत है ।

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम्।
मन्त्रोऽहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ।।९/१६ गीता

हे आत्मन् ! क्रतु अर्थात् मनोरथ अभिलाषा व प्रेरणा देनेवाला मैं हूँ,यज्ञ मैं हूँ, स्वधा मैं हूँ । औषधि मैं हूँ, मन्त्र मैं हूँ, भूत मैं हूँ, घृत मैं हूँ, अग्नि मैं हूँ और हवन रूप क्रिया भी मैं हूँ ।

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।
वैद्यं पवित्रमोंकार ऋक्साम यजुरेव च ।। ९/१७ गीता

इस सम्पूर्ण जगत् का धारण करने वाला धाता एवं कर्मों के फलोंको देने वाला, पिता, माता, पितामह, जानने योग्य पवित्र ओंकार तथा ऋग्वेद,सामवेद,और यजुर्वेद भी मैं हूँ ।

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम।।

९/१८ गीता

प्राप्त होने योग्य परम धाम, भरणपोषण करने वाला सबका स्वामी, शुभाशुभ का देखने वाला, सबका वासस्थान, शरण लेने योग्य प्रत्युपकार न चाहकर हित करनेवाला, सबकी उत्पत्ति–प्रलयका हेतु, स्थितिका आधार, निधान अर्थात् प्रलय काल में सभी जीव मुझ में लीन होते हैं और अविनाशी कारण भी मैं ही हूँ।

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च।
अमृतं चैव मृत्यश्च सदसच्चाहमर्जुन ।। ९/१९ गीता

मैं ही सूर्य रूप से तपता हूँ, वर्षा का आकर्षण करता हूँ और उसे बरसाता हूँ। हे अर्जुन ! मैं ही अमृत और मैं ही मृत्यु हूँ और सत्–असत् भी मैं ही हूँ। मेरे से पृथक् अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड में किंचित् भी कुछ अन्य नहीं है।

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशय स्थितः।
अहमादिश्च मध्मं च भूतानामन्त एव च ।।१०/२०गीता

हे आत्मन ! मैं ब्रह्म ही सब भूतों के हृदय में स्थित सबका आत्मा हूँ तथा सम्पूर्ण चराचर का आदि,मध्य और अन्त भी मैं ही हूँ ।

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम् ।। १३/१७ गीता

यह परब्रह्म ज्योतियों का भी ज्योति एवं माया से अति परे निरंजन कहा जाता है । वह परमात्मा ज्ञान स्वरूप, जानने के योग्य एवं तत्त्वज्ञान द्वारा मैं रूप से प्राप्त करने योग्य है और सबके हृदय में बुद्धि के साक्षी रूप में विद्यमान है 'सर्वधी साक्षी भूतम्' ।

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्व प्रवर्तते। १०/८ गीता

मैं वासुदेव ही सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्तिका कारण हूँ और सम्पूर्ण जगत् मेरे द्वारा ही सब प्रकार की चेष्टा करता है ।

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान्।
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी ।।१०/२१ गीता

मैं अदितिके बारह पुत्रों में विष्णु और ज्योतियोंमें किरणोंवाला सूर्य हूँ तथा मैं उनचास वायु देवताओंका तेज और नक्षत्रोंका अधिपति चन्द्रमा हूँ।

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवा।
इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना।।

१०/२२ गीता

मैं वेदों में सामवेद हूँ, देवो में इन्द्र हूँ, इन्द्रियोंमें मैं मन हूँ और भूत प्राणियों की चेतना अर्थात् जीवन–शक्ति हूँ।

रुद्राणां शंकराश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम्।
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम्।।

१०/२३ गीता

मैं एकादश रुद्रोंमें शंकर हूँ और यक्ष तथा राक्षसोंमें धनका स्वामी कुबेर हूँ। मैं आठ वसुओंमें अग्नि हूँ और शिखरवाले पर्वतों में सुमेरु पर्वत हूँ।

पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम्।
सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः।।

१०/२४ गीता

पुरोहितोंमें मुखिया बृहस्पति मुझको जान । मैं सेनापतियोंमें स्कन्द और जलाशयों में समुद्र हूँ ।

महर्षिणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम्।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालय:।।

१०/२५ गीता

मैं महर्षियोंमें भृगु और शब्दोंमें एक अक्षर अर्थात् ओंकार हूँ । सब प्रकार के यज्ञोंमें जपयज्ञ और स्थिर रहनेवालोंमें हिमालय पर्वत् मैं हूँ ।

अश्वत्थ: सर्व वृक्षाणां देवर्षीणां च नारद:।
गन्धर्वाणां चित्ररथ: सिद्धानां कपिलो मुनि:।।

१०/२६ गीता

मैं सब वृक्षोंमें पीपल का वृक्ष, देवर्षियों में नारद मुनि, गन्धर्वों में चित्ररथ और सिद्धोंमें कपिल मुनि हूँ ।

उच्चै:श्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम्।
ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम्।।

१०/२७ गीता

अमृत के साथ उत्पन्न होनेवाला उच्चै:श्रवा नामक घोड़ा, श्रेष्ठ हाथियोंमें एरावत नामक हाथी और मनुष्योंमें हरिश्चन्द्र राजा मुझको जान ।

आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक्।
प्रजनश्चास्मि कन्दर्प: सर्पाणामस्मि वासुकि:।।

१०/२८ गीता

मैं शस्त्रोंमें वज्र और गौओंमें कामधेनु गाय हूँ। शास्त्रोक्त रीतिसे सन्तान उत्पत्तिका हेतु कामदेव हूँ और सर्पोमें सर्पराज वासुकि हूँ।

अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम् ।
पितृणामर्यमा चास्मि यम: संयमतामहम्।।

१०/२९ गीता

मैं नागोंमें शेषनाग और जलचरोंका अधिपति वरुण देवता और पितरोंमें अर्यमा नामक पितर तथा शासन करनेवालोंमें यमराज हूँ।

प्रह्लादश्चास्मि दैत्वानां काल: कलयतामहम् ।
मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम्।।

१०/३० गीता

मैं देत्योंमें प्रह्लाद और गणना करनेवालोंका दिन–रात,महिना, वर्ष, घन्टा, मिनट, क्षणादि समय मैं हूँ ।

पवन: पवितामस्मि राम: शस्त्रभृतामहम्।
झषाणां मकरश्चास्मि स्त्रोतसामस्मि जाह्नवी।।

१०/३१ गीता

मैं पवित्र करनेवालोंमें वायु और शस्त्रधारियोंमें श्रीशंकर व श्रीराम हूँ और मुरलीधारियोंमें श्रीकृष्ण हूँ तथा गदाधारियोंमें श्री हनुमान हूँ । मछलियोंमें मगर और नदियोंमें श्री भागीरथी गङ्गा हूँ ।

सर्गाणांमादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन।
अध्यात्मविद्या विद्यानां वाद: प्रवदतामहम्।।

१०/३२ गीता

हे अर्जुन! सृष्टियोंका आदि और अन्त तथा मध्य भी मैं ही हूँ । विद्याओंमें सर्व श्रेष्ठ अध्यात्म विद्या अर्थात् ब्रह्मविद्या मैं हूँ और परस्पर तत्त्व निर्णय के लिये किये जानेवाला वाद भी मैं हूँ ।

अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्य च ।
अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः।।

१०/३३ गीता

मैं अक्षरोंमें अकार हूँ और समासोंमें द्वन्द्व नामक समास हूँ। अक्षयकाल अर्थात् कालका भी महाकाल मैं हूँ। सब ओर मुखवाला विराट् स्वरूप और सबका धारण–पोषण करने वाला ईश्वर भी मैं ही हूँ।

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम्।
कीर्तिःश्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिःक्षमा।।

१०/३४ गीता

मैं सबका नाश करनेवाला मृत्यु और उत्पन्न होने वालोंकी उत्पत्ति का हेतु हूँ तथा स्त्रियोंमें कीर्ति, श्री, वाक्, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा भी मैं हूँ।

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम्।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः।।१०/३५ गीता

तथा गायन करने योग्य श्रुतियोंमें मैं बृहत्साम और छन्दोंमें गायत्री छन्द हूँ तथा महीनोंमें मार्गशीर्ष और ऋतुओंमें वसन्त मैं हूँ।

द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्।
जयोऽस्मि व्यवसायोस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम्।।१०/३६

मैं छल करनेवालोंमें जूआ और प्रभावशाली पुरुषोंका प्रभाव हूँ। मैं जीतने वालोंका विजय हूँ, निश्चय करनेवालोंकी निश्चयात्म बुद्धि और सात्त्विक पुरुषोंका सात्त्विक हूँ।

वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनंजय:।
मुनिनामप्यहं व्यास: कवीनामुशना कवि:।।१०/३७ गीता

वृष्णिवंशियोंमें वासुदेव हूँ तथा पाण्डवोंमें मेरा सखा तू धनंजय अर्जुन है। मुनियोंमें वेदव्यास और कवियोंमें शुक्राचार्य कवि भी मैं हूँ।

दन्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम्।
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम्।।

१०/३८ गीता

मैं दमन करनेवालोंका दण्ड अर्थात् दमन करने की शक्ति हूँ, जीतने की इच्छावालों की नीति हूँ, गुप्त रखनेयोग्य भावोंका रक्षक मौन हूँ और ज्ञानवानोंका तत्त्वज्ञान मैं ही हूँ।

यद्यापि सर्व भूतानां बीजं तदहमर्जुन।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम्।।

१०/३९ गीता

और हे अर्जुन! जो सब भूतोंकी उत्पत्तिका कारण है, वह भी मैं ही हूँ, क्योंकि चर और अचर कोई भी भूत नहीं है, जो मुझसे रहित हो ।

अतः इस संसार के जीवों को तू मेरा परिवार ही जान । इनकी सेवा ही मेरी सच्ची भक्ति, पूजा व प्रसन्नता है । अन्यथा मेरे परिवार रूप किसी जीव को कष्ट पहुँचानेवाला जीव की हत्या करने वाला, किसी को शत्रु मानने वाला, मुझको मूर्ति, चित्र या एकदेशीय जानने वाला मेरा कभी प्रिय नहीं हो सकेगा। अपितु उसे ब्रह्म हत्यारा ही निश्चय से जान ।

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्।।१०/४१ गीता

जो–जो भी विभूतियुक्त अर्थात् ऐश्वर्ययुक्त, कान्तियुक्त और शक्तियुक्त वस्तु है, उस–उस वस्तु को तू मेरे तेजके अंशकी अभिव्यक्ति ही जान ।

सर्वत: पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वत: श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति।।१३/१३ गीता

निर्गुण निराकार होकर भी प्रकृति में छुपा रहकर सब जीवों के मैं सब ओर हाथ–पैर, नेत्र, सिर, मुख, आँख, कान और मन, बुद्धिवाला हूँ। क्योंकि मैं संसार में सबको व्याप्तकर स्थित हूँ।

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च।।

१३/१४ गीता

मैं समस्त इन्द्रियों के विषयों को जानने वाला हूँ,परन्तु वास्तव में मैं सब इन्द्रियों से रहित हूँ तथा आसक्ति रहित होनेपर भी सबका धारण–पोषण करनेवाला और निर्गुण होनेपर भी शरीर में विद्यमान होकर जीव रूप से गुणों को भोगनेवाला हूँ।

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्।।

१३/१५ गीता

मैं चराचर सब भूतोंके बाहर–भीतर परिपूर्ण हूँ। सत्–असत्, चर–अचर भी मैं ही हूँ और मैं सूक्ष्म होने से सबके अविज्ञेय हूँ।

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः ।।

६/२१ गीता

केवल शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धिद्वारा जानने योग्य तथा अति समीप अर्थात् सोऽहम् रूप सबके आत्मा रूप में मैं हूँ किन्तु अज्ञानियोंके लिये तो मैं वैकुण्ठादि लोकों में दूर से दूर पर स्थित हूँ।

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तय: सम्भवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रद: पिता।।

१४/४ गीता

हे आत्मन् ! नाना प्रकारकी सब योनियोंमें जितनी मूर्तियाँ अर्थात् शरीरधारी प्राणी उत्पन्न होते हैं प्रकृति तो उन सबका गर्भ धारण करने वाली माता है और मैं उनमें बीज को स्थापन करने वाला सबका मैं परम पिता हूँ और उनके गर्भ से उत्पन्न होनेवाला सन्तान भी मैं ही हूँ।

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ।।

१५/७ गीता

पंचभूतों में स्थित यह जीवात्मा मेरा ही प्रतिविम्ब रूप मेरा ही सनातन अंश है किन्तु जीव को अपने सहज स्वरूप की अज्ञानता होने के कारण वह प्रकृति में स्थित शरीर, इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि को अपना स्वरूप मानने की महान भूल कर लेता है। इसलिये मैं शरीर से पृथक् द्रष्टा, साक्षी, आत्मा हूँ यह बात शिघ्रता से उसे समझ में नहीं आती है ।

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्।।

१५/१२ गीता

सूर्य में स्थित जो तेज सम्पूर्ण जगत्को प्रकाशित करता है तथा जो तेज चन्द्रमा में है और जो अग्नि में है उसको तू मेरा ही तेज जान।

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा।
पुष्णामि चौषधी: सर्वा सोमो भूत्वा रसात्मक:।।

१५/१३ गीता

मैं ही पृथ्वी में प्रवेश करके अपनी शक्तिसे सब भूतों को धारण करता हूँ और रसरूप होकर अमृतमय चन्द्रमा होकर सम्पूर्ण औषधियोंका अर्थात् वनस्पतियोंको पुष्ट करता हूँ ।

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रित:।
प्राणापानसमायुक्त: पचाम्यन्नं चतुर्विधम्।।

१५/१४ गीता

मैं ही सब प्राणियोंके शरीरमें स्थित रहनेवाला प्राण और अपान से संयुक्त वैश्वानर अग्निरूप होकर चार प्रकार के अन्नको पचाता हूँ ।

सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो मत्त:
स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्।। १५/१५ गीता

मैं ही सब प्रणियों के हृदय में अन्तर्यामी स्थित हूँ तथा मुझसे ही स्मृति, ज्ञान और मुझसे ही संशय–विपर्यय दोषोंको दूर करने की शक्ति जीवोंको प्राप्त होती है और

सब वेदों द्वारा मैं ही जानने योग्य हूँ तथा वेदान्त का कर्ता और वेदोंको जाननेवाला भी मैं ही हूँ।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति।।

६/३० गीता

जो पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें सबके आत्म स्वरूप मुझ वासुदेव को ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतों को मुझ वासुदेवके अन्तर्गत देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता हूँ और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता है।

ब्रह्मैवेदममृतं पुरुस्ताद्ब्रह्म,
पश्चाद्ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण ।
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम ।।

२/२/११ मुण्डक उप.

यह अमृत स्वरूप ब्रह्म ही सबके आगे, पीछे, बाँयें, दाँये तथा ब्रह्म ही नीचे–ऊपर भीतर–बाहर सभी ओर आकाशवत् फैला हुआ है । यह सम्पूर्ण विश्व सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म के अतिरिक्त किञ्चित् भी कुछ अन्य नहीं है ।

अतः निश्चय करे कि परमात्मा होगा तो यहाँ होगा, अभी होगा व मेरे रूप में ही होगा । यदि वह परमात्मा यही नहीं, अभी नहीं व मेरे रूप में नहीं तब मैं यह डंके की चोंट पर कह सकता हूँ कि वह वेद मतानुसार अखण्ड परमात्मा भी नहीं है । क्योंकि वेद में अखण्ड परमात्मा उसी सत्ता को बताया गया है जो सत्ता सब देश, सब काल, सर्व रूप में हो ।

'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'

देश काल दिशी विदेश हुँ माहि
कह हुँ कहाँ जहाँ प्रभु नाहि ।। (रामायण)

परमात्मा अखण्ड होने से यहाँ होगा, अभी होगा तथा मेरे रूप में होगा। यदि वह परमात्मा यहाँ नहीं, अभी नहीं तथा मेरे रूप में नहीं तो वह कल्पित जड़, परिच्छिन्न, एक देशीय नाशवान्, दृश्य मूर्ति कभी परमात्मा नहीं हो सकेगा ।

परमात्मा को केन्द्र में रखकर जीने वाले सहजावस्था अर्थात् ज्ञानरूपी अमृत को भोगते हैं । अतः परमात्मा को केन्द्र बनाकर जीवन की परिक्रमा कीजिये । जैसे भक्त भगवान

की मूर्ति को मध्य में रखकर उसकी चारों ओर परिक्रमा करते हैं वह तो एक प्रतीक रूप उपासना है । परन्तु वास्तविकता तो यह है कि अपनी देह रूपी मन्दिर में अन्तःकरण के साक्षी रूप से परमात्मा को रखते हुए जीवन यात्रा पूर्ण करना है । ज्ञान ही अमृतत्व है वहाँ मृत्यु नहीं । जो सहज जीवन जीने का रहस्य नहीं जानता है वह अज्ञानी हर क्षण मृत्यु को भोगता है ।

अतः अपने समस्त कर्मों को भगवान् के समर्पित करदो । खाओ तो प्रभु को समर्पण करो की वही मुझमें खा रहाहै । देखो तो प्रभु देख रहा है । सुनो तो परमात्मा ही मुझ में सुन रहा है । चलो तो परमात्मा ही मुझ में चल रहा है । बोलोतो परमात्मा ही मुझ में बोल रहा है । गाओ तो परमात्मा ही गा रहा है । कर्म करो तो परमात्मा ही मेरे हाथों द्वारा कर रहा है । चलो तो परमात्मा ही मेरे पैरों से चल रहा है । क्योंकि परमात्मा निर्गुण निराकार शक्ति रूप है । परमात्मा में जीना ही सहज अवस्था है ।

गो गोचर जहाँ लगि मन जाई
सो सब माया जान हूँ भाई ।। (रामायण)

हे भक्तों ! तुम निश्चय से जानों कि इन्द्रियों द्वारा जहाँ तक देखा, सुना, जाना, पहुँचा जाता है वह सब स्वप्न की तरह असत् ही है, किन्तु असत् को जानने वाले तुम आत्मा ही एक मात्र सत्य हो । स्वप्न तो असत्य ही है पर स्वप्न द्रष्टा कभी असत् नहीं होता है अपितु सत्य ही होता है ।

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमाया समावृतः ।
मूढ़ोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ।।

७/२५ गीता

यह जो मूढ़ मनुष्य समाज, परमात्मा को अजन्मा, अविनाशी रूप से नहीं जानते हैं बल्कि उसे जन्मने–मरने वाला मानते हैं । किन्तु मेरा राम, कृष्ण, शिवादि अवतार तो योग माया से ढका होने के कारण नाम, रूप अध्यास के अधिष्ठान रूप मुझ अस्ति, भाति, प्रिय सच्चिदानन्द निज आत्मा को कोई भक्त नहीं जान पाते हैं । जैसे बुर्खा पहिने हुए महिला या पुरुष तो सभी दृश्यवर्ग को देखते हैं किन्तु उस बुर्खा के भीतर वाले उस द्रष्टा को कोई नहीं देखपाते हैं। इसी तरह इन नाम, रूप से ढके योग माया रूपी अवतार को तो

सब देखते हैं किन्तु उस योगमाया से छिपे मुझ परमात्मा को अज्ञानी लोग नहीं जान पाते हैं, बल्कि मुझे मनुष्य की तरह जन्मने–मरने वाला ही जान राम नवमी, जन्माष्टमी आदि उत्सव मनाकर ही खुश हो जाते हैं । किन्तु इस प्रकार कल्पित भेद भक्ति द्वारा उनका कल्याण नहीं हो सकता है ।

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप।। ४/५ गीता

हे अर्जुन! मेरे और तेरे द्वारा बहुतसे शरीरों का ग्रहण व त्याग हो चुका है । उन सबको तू नहीं जानता है, किन्तु मैं जानता हूँ ।

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपा:।
न चैव न भविष्याम: सर्वे वयमत: परम्।।२/१२

न तो ऐसा ही है कि मैं किसी काल में नहीं था,तू नहीं था अथवा जिनके लिये तू पूछ रहा है ये सब नहीं थे और न ऐसा ही है कि इससे आगे हम सब नहीं रहेंगे। क्योंकि अविनाशी आत्मा की कभी मृत्यु नहीं होती है ।

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीररस्तत्र न मुह्यति।।

२/१३ गीत

जैसे जीवात्मा के निवास स्थान इस देह में बालकपन, जवानी, वृद्धावस्था और मृत्यु होती है,वैसे ही अन्य शरीर की प्राप्ति होती है। परन्तु हम दृश्य शरीर को ही जो अपना वास्तविक स्वरूप जानलेता है वह जीव आत्म हत्यारा कहलाता है ।

अजो नित्य: शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।

२/२० गीता

परन्तु यह आत्मा किसी कालमें न तो जन्मता है और न कभी मरता ही है। यह अजन्मा, नित्य,सनातन और पुरातन है। शरीर के मरने पर भी यह कभी नहीं मरता है, जो तेरा–मेरा वास्तविक स्वरूप है।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि
संयाति नवानि देही।। २/२२ गीता

जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रोंको त्यागकर दूसरे नये वस्त्रोंको ग्रहण करता है, वैसे ही यह जीवात्मा प्रारब्ध भोग समाप्त होने पर पुराने वस्त्र के समान वर्तमान देह का त्याग कर दूसरे नये शरीर को प्राप्त होता है। किन्तु जीव का नाश कभी नहीं होता है ।

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।

१८/७३ गीता

हे भगवन्! आपके द्वारा यह परम गोपनीय अध्यात्मिक प्रवचन श्रवणकर मेरा अज्ञान जनित भ्रम व मोह नष्ट होगया और मुझे अपने अनादि काल से भूले हुए द्रष्टा, साक्षी, आत्म स्वरूप की स्मृति जाग्रत होगई है। इसलिये मैं कृतार्थ हो चुका हूँ, अब मेरे लिये किञ्चित् भी कर्तव्य नहीं है ।

हे अर्जुन ! अगर तुझे यह बोध होगया है कि तू द्रष्टा, साक्षी आत्म स्वरूप है, तो अपना अनुभव बताओ की जीव को बन्धन क्यों होता है ?

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।
अहङ्कार विमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ।।

३/२७ गीता

इस देह के भीतर–बाहर सभी क्रियाएँ इन्द्रियों के द्वारा, पांच भूतों के द्वारा होती रहती है, किन्तु अज्ञानी पुरुष अपने मन में मैं कर्मों का कर्ता हूँ, मैं फलों का भोक्ता हूँ ऐसा अभिमान करता है इसलिये वह बन्धन को प्राप्त होता है ।

फिर उसे मुक्ति कैसे मिलेगी ?

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्नहन्ति न निबध्यते ।।

१८/१७ गीता

जिस ज्ञानी पुरुष के अन्तःकरण में कर्मों के प्रति''मैं कर्ता हूँ'' इस प्रकार कर्तृत्वाभिमान नहीं होता है एवं कर्म फलके प्रति 'मैं भोक्ता हूँ' इस प्रकार उसकी बुद्धि फल में लिपायमान नहीं होती है, उस ज्ञानी पुरुष के द्वारा प्रारब्धवश सम्पूर्ण प्राणियों की हत्या हो जावे तो भी वह मारकर वास्तव में न तो मारता है और न वह बन्धन को प्राप्त होता है । जैसे डाक्टर के मन में कामना, ममता, अहंकार और स्वार्थ बुद्धि न होने से यदि आप्रेशन करने से रोगी मर भी जावे तो उसे पाप नहीं लगता है ।

वह अपना संसार व्यवहार कैसे करेगा ?

नैव किञ्चित्करोमिति युक्तो मन्येत तत्त्ववित् ।

५/८ गीता

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन ।।

५/९ गीता

आत्म तत्त्व को जानने वाला सांख्य योगी तो देखता हुआ, सुनता हुआ, छूता हुआ, सूंघता हुआ, खाता हुआ, बोलता हुआ, श्वाँस क्रिया चलता हुआ, आँख बन्द व खोलता हुआ, सोता हुआ, जागता हुआ, संभोग करता हुआ, मल–मूत्र त्याग करता हुआ सम्पूर्ण १४ त्रिपुटियाँ अपने विषयों में बरत रही है ऐसा समझकर 'मैं स्वयं कुछ नहीं करता हूँ' ऐसा अपने को असंग, निष्क्रिय, अकर्ता, साक्षी, आत्म स्वरूप जानता रहता है ।

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति ।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधि गच्छति ।।

गीता १४/१९

जिस समय द्रष्टा पुरुष तीन गुणों के अतिरिक्त अन्य किसी को कर्ता नहीं देखता है और तीनों गुणों से अत्यन्त परे

सच्चिदानन्दघन स्वरूप मुझ परमात्मा को मैं रूप से, आत्मरूप से जानता है, उस समय वह मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है ।

इदं ते तानपस्काय नाभक्ताय कदाचन ।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति ।।

१८/६७ गीता

हे अर्जुन ! तेरे पूछने पर तेरे हित के लिये कहे हुए इस परम गोपनीय, परम रहस्य गीता ज्ञान अमृत का किसी काल में भी न तो अद्वैत ज्ञानपर अश्रद्धा करने वाले को, न गुरु द्रोही को, न इन्द्रिय असंयमी को, न सकामी कर्मी को, न सकामी भक्तों को, न ब्रह्म जिज्ञासा से रहित अज्ञानी को, न गुरु देव, माता, पिता की भक्ति से रहित पुत्र अथवा शिष्य को, न बिना सुनने की इच्छा वाले को और जो निर्गुण, निराकार, ब्रह्म, भगवान् की अर्थात् आत्मज्ञान की निन्दा करता है ऐसे लोगों को तो कभी नहीं कहना चाहिये । परन्तु जिनमें यह सब उपरोक्त दोष नहीं हों, ऐसे मेरे भक्तों के प्रति प्रेम पूर्वक, उत्साह के सहित निष्काम भाव से अवश्य कहना चाहिये ।

य इमं परम गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशय।।१८/६८ गीता

जो पुरुष मुझमें परम प्रेम रखता हुआ इस परम पवित्र रहस्य युक्त गीता ज्ञान अमृत को निष्काम भाव से प्रीति पूर्वक मेरे भक्तोंसे कहेगा, वह दोनों ही मुझको प्राप्त होंगे इसमें कोई सन्देह नहीं है। मैं उनके द्वारा इस स्वाध्याय रूप परम श्रेष्ठ ज्ञान यज्ञ द्वारा पूजित होउँगा– ऐसा मेरा मत है।

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तम:।
भविता न च मे तस्मादन्य: प्रियतरो भुवि।।

१८/६९ गीता

उससे बढ़कर मेरा सम्पूर्ण पृथ्वी पर प्रिय कोई दूसरा नहीं है और भविष्य में भी नहीं हो सकेगा।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद् गीता सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योग शास्त्रे श्रीकृष्ण अर्जुन संवादे मोक्ष संन्यास योगोनाम उपदेश समाप्त: ।।

सर्व काल में प्रभु स्मरण

जब मैं उठती हूँ – परमात्मा ही मुझमें उठते हैं । परमात्मा के बिना मैं कभी नहीं उठ सकता ।

जब मैं चलती हूँ – परमात्मा ही मुझमें चलते हैं । परमात्मा के बिना मैं कभी नहीं चल सकता ।

जब मैं देखती हूँ – परमात्मा ही मुझमें देखते हैं । परमात्मा के बिना मैं कभी नहीं देख सकता ।

जब मैं पीती हूँ – परमात्मा ही मुझमें पीते हैं । परमात्मा के बिना मैं कभी नहीं पी सकता ।

जब मैं खाती हूँ – परमात्मा ही मुझमें खाते हैं । परमात्मा के बिना मैं कभी नहीं खा सकता ।

जब मैं सुनती हूँ – परमात्मा ही मुझमें सुनते हैं । परमात्मा के बिना मैं कभी नहीं सुन सकता ।

जब मैं बोलती हूँ – परमात्मा ही मुझमें बालेते हैं । परमात्मा के बिना मैं कभी नहीं बोल सकता ।

जब मैं कर्म करती हूँ – परमात्मा ही मुझमें कर्म करते हैं । परमात्मा के बिना मैं कभी नहीं कर्म कर सकता ।

जब मैं सोती हूँ – परमात्मा ही मुझमें सोते हैं । परमात्मा के बिना मैं कभी नहीं सो सकता ।

जब मैं जागती हूँ – परमात्मा ही मुझमें जागते हैं । परमात्मा के बिना मैं कभी नहीं जाग सकता ।

जब मैं उठती हूँ – परमात्मा ही मुझमें उठते हैं । परमात्मा के बिना मैं कभी नहीं उठ सकता ।

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना ।
कर बिनु कर्म करही विधि नाना ।।
आनन रहित सकल रस भोगी ।
बिन वाणी वक्ता बड़ जोगी ।।
तन बिनु परस नयन बिनु देखा ।
ग्रहइ घ्राण बिनु बास अषेशा ।।
एही सब भाति अलौकिक करणी ।
महिमा जासु जाय नहीं बरणी ।।

परमात्मा व्यक्ति नहीं शक्ति

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।।

केनोपनिषद् : १/४

वाणी के द्वारा जो कुछ भी व्यक्त किया जा सकता है तथा प्राकृत वाणी से बतलाये हुए जिस तत्त्वकी उपासना की जाती है, वह ब्रह्म का वास्तविक स्वरूप नहीं है । ब्रह्म तत्त्व वाणीसे सर्वदा अतीत है । उसके विषय में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि जिसकी शक्तिके किसी अंशसे वाणी में प्रकाशित होनेकी – बोलनेकी शक्ति आती है, जो वाणीका भी ज्ञाता, प्रेरक और प्रवर्तक है, वह ब्रह्म है ।

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।।

केनोपनिषद् : १/५

बुद्धि और मनका जो कुछ भी विषय है, जो इनके द्वारा जानने में आ सकता है तथा प्राकृत मन–बुद्धिसे जाने हुए जिस तत्त्वकी उपासना की जाती है, वह ब्रह्मका वास्तविक

स्वरूप नहीं है । परब्रह्म परमेश्वर मन और बुद्धि से सर्वथा अतीत है । इसके विषयमें केवल इतना ही कहा जा सकता है कि जो मन–बुद्धिका ज्ञाता, उनको मनन और निश्चय करने की शक्ति देनेवाला तथा मनन और निश्चय करनेमें नियुक्त करनेवाला है तथा जिसकी शक्ति के किसी अंश से बुद्धि में निश्चय करने की और मन में मनन करने की सामर्थ्य आती है, वह ब्रह्म है, वह तुम हो ।

यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूँषिं पश्यति ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।।

केनोपनिषद् : १/६

चक्षु का जो कुछ भी विषय है, जो इनके द्वारा देखने– जानने में आ सकता है तथा प्राकृत आखोंसे देखे जानेवाले जिस पदार्थ समूह की उपासना की जाती है, वह ब्रह्मका वास्तविक स्वरूप नहीं है । परब्रह्म परमेश्वर चक्षु आदि इन्द्रियों से सर्वथा अतीत है । उसके विषयमें केवल इतना ही कहा जा सकता है कि जिसकी शक्ति, प्रेरणासे चक्षु आदि ज्ञानेन्द्रियाँ अपने–अपने विषयको प्रत्यक्ष करनेमें समर्थ होती है, जो इनको जाननेवाला वह ब्रह्म है । उस ब्रह्म की तु

यह रूप से भिन्न रूप से कभी उपासना नहीं करना क्योंकि वह ब्रह्म का वास्तविक स्वरूप नहीं है, वह तुम हो ।

यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।।

केनोपनिषद् : १/७

जो कुछ भी सुननेमें आनेवाला पदार्थ है तथा प्राकृत कानोंसे सुने जाने वाले जिस वस्तु–समुदाय की उपासना की जाती है, वह ब्रह्मका वास्तविक स्वरूप नहीं है । परब्रह्म परमेश्वर श्रोत्रेन्द्रिय से सर्वथा अतीत है । उसके विषयमें केवल इतना ही कहा जा सकता है कि जो श्रोत्र–इन्द्रियका ज्ञाता, प्रेरक और उसमें सुनने की शक्ति देने वाला है तथा जिसके शक्तिके किसी अंशसे श्रोत्र इन्द्रियों में शब्दों को ग्रहण करनेकी सामर्थ्य आयी है, वह ब्रह्म है, वह तुम हो ।

यत् प्राणेन न प्राणिति येन प्राणःप्रणीयते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।।

केनोपनिषद् : १/८

प्राणके द्वारा जो कोई भी चेष्टायुक्त की जानेवाली वस्तु है, तथा प्राकृत प्राणसे अनुप्राणित जिस तत्त्वकी उपासना

की जाती है, वह ब्रह्मका वास्तविक स्वरूप नहीं है । परब्रह्म परमेश्वर उससे सर्वथा अतीत है । उसके विषयमें केवल इतना ही कहा जा सकता है कि जो प्राण का ज्ञाता, प्रेरक और उसमें शक्ति देनेवाला है, जिसकी शक्तिके किसी अंशको प्राप्त करके और जिसकी प्रेरणासे यह प्रधान प्राण सबको चेष्टायुक्त करनेमें सामर्थ होता है, वही सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ब्रह्म है वह तुम हो।

सारांश यह है कि प्राकृत मन तथा इन्द्रियोंसे जिन विषयोंकी उपलब्धि होती है, वे सभी प्राकृत होते हैं; अतएव उनको परब्रह्म परमेश्वर परात्पर पुरुषोत्तम का वास्तविक स्वरूप नहीं माना जा सकता । इसलिये उनकी उपासना भी परब्रह्म परमेश्वरकी उपासना नहीं है । मन–बुद्धि आदिसे अतीत परब्रह्म परमेश्वरके स्वरूपको सांकेतिक भाषामें समझानेके लिये ही यहाँ गुरुने इन सबके ज्ञाता, शक्तिप्रदाता, स्वामी, प्रेरक, प्रवर्तक, सर्वशक्तिमान्, नित्य, अप्राकृत परम तत्त्वको ब्रह्म बतलाया है । अतः अब इस हृदय स्थित बुद्धि के साक्षी आत्म ब्रह्म का यहि वास्तविक स्वरूप है ।

मेरा प्रिय कौन ?

अद्वेष्टा सर्व भूतानां मैत्र: करुण एव च।
निर्ममो निरहंकार: समदु:खसुखः क्षमी ।।

१२/१३ गीता

संतुष्ट: सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चय:।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्त: स मे प्रिय:।।१२/१४ गीता

जो पुरुष सब भूतोंमें द्वेष भावसे रहित, स्वार्थरहित, सबका प्रेमी और हेतुरहित दयालु है तथा ममतासे रहित, अहङ्कार से रहित सुख–दु:खोंकी प्राप्तिमें सम और क्षमावान् है अर्थात् अपराध करने वालेको भी अभय देनेवाला है; तथा जो योगी निरन्तर संन्तुष्ट है, मन–इन्द्रियों सहित शरीरको वशमें किये हुए है और मुझमें दृढ निश्चयवाला है वह मुझमें अर्पण किये हुए मन–बुद्धिवाला मेरा भक्त मुझको प्रिय है।

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च य:।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो य: स च मे प्रिय:।।१२/१५ गीता

जिससे कोई भी जीव उद्वेग को प्राप्त नहीं होता और जो स्वयं भी किसी जीवसे उद्वेग को प्राप्त नहीं होता तथा जो हर्ष, अमर्षको अर्थात् स्वयं भी किसीकी उन्नति को देखकर संताप नहीं करता, जो भय से रहित है–वह भक्त मुझको प्रिय है।

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः।।

१२/१६ गीता

जो पुरुष आकाङ्क्षासे रहित, बाहर–भीतरसे शुद्ध, चतुर, पक्षपातसे रहित और दुःखोंसे मुक्त वह सब आरम्भों का त्यागी मेरा भक्त मुझको प्रिय है।

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः।।

१२/१७ गीता

जो न कभी हर्षित होता है न द्वेष करता है, न शोक करता है, न किसी प्रकार की कामना करता है तथा जो शुभ और अशुभ सम्पूर्ण कर्मोका त्यागी है वह भक्तियुक्त पुरुष मुझको प्रिय है।

सम: शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयो:।
शीतोष्णसुख दु:खेषु सम: सङ्गविवर्जित:।।

१२/१८ गीता

जो शत्रु–मित्रमें और मान–अपमान में, सरदी, गरमी और सुख–दु:खादि द्वन्द्वोंमें समान भाव और आसक्ति से रहित है वह साक्षी भाव में स्थित ज्ञानी भक्त मुझे प्रिय है ।

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनि संतुष्टो येन केनचित्।
अनिकेत: स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नर:।।

१२/१९ गीता

मैं आत्मा तो निर्गुण निराकार हूँ, उसे तो कोई देखता नहीं व साकार शरीर अपना नहीं है । ऐसे निष्ठावान ज्ञानी पुरुष शत्रु और मित्रमें तथा मान–अपमान में सम है और शीत–उष्ण (शरीरकी अनुकूलता–प्रतिकूलता) तथा सुख–दु:ख (मन–बुद्धिकी अनुकूलता प्रतिकूलता) – में सम है एवं आसक्ति रहित होता है । जो निन्दा–स्तुति को समान समझनेवाला, मननशील, जिस किसी प्रकारसे भी शरीरका निर्वाह होने न होने में सन्तुष्ट रहता है रहनेके स्थान तथा शरीर में ममता–आसक्तिसे रहित और स्थिर बुद्धिवाला है,

वह भक्तिमान् ज्ञानी मुझे प्रिय है ।

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम् ।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ।।

१३/७ गीता

हे अर्जुन ! श्रेष्ठ कार्य करके भी अपनी श्रेष्ठता, मान, बड़ाई का मन में अभाव रहना, तथा जैसी अपनी घर की, मन की स्थिति है, उस को वैसा ही सबके सम्मुख प्रकट करदेता, प्राणी मात्र में एक परमात्मा का भाव रखते हुए किसी छोटे से छोटे जीव जन्तु को, अपने से कमजोर व गरीब व्यक्ति को किसी प्रकार कष्ट नहीं पहुँचाना, सामर्थ्य होते हुए भी अपने प्रति अपराध करने वाले को क्षमा करना तथा मन, वाणी की सरलता, श्रद्धा, विश्वास सहित सद्गुरु की सेवा करना, अन्तःकरण का अनित्य संसार के प्रति सुख बुद्धि का न होना, भीतर–बाहर की शुद्धि तथा इन्द्रियाँ व मन का निग्रह करना यह दैवी सम्पदा वाले भक्त के लक्षण है ।

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहङ्कार एव च ।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ।।

जिस साधक के मन में इस लोक के विषय भोगों से ब्रह्मादिक लोक के सुख भोगों के पदार्थ के प्रति वैराग्य और जाति, आश्रम, विद्या, धन, पद आदि में मैं सर्व से श्रेष्ठ हूँ, इस प्रकार के अहंकार का अभाव एवं जन्म–मृत्यु, जरा–व्याधि में जो सर्वदा दुःखों का ही विचार रखता है ।

असक्तिनरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु ।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ।। १३/९ गीता

जिस के मन में धन, सम्पत्ति, स्त्री, पुत्र एवं सम्बन्धीजनों के प्रति यह सब मेरे हैं, इस प्रकार अहंता–ममता का अभाव रहता है, तथा अनुकूल पदार्थ धन, पुत्रादि के प्राप्ति में न हर्ष करता है व अनुकूल धन, पुत्रादि के नष्ट होने पर दुःख भी नहीं करता है अर्थात् दुःख–सुख में समत्व बुद्धि रखता है ।

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ।। १३/१० गीता

जिसके मन में मुझ परमेश्वर में एकी भाव से स्थिति

अर्थात् भगवान मेरी आत्मा है, मैं वही ब्रह्म हूँ इस प्रकार से अव्यभिचारिणी भक्ति रहती है अर्थात् आत्म देव को छोड़ अन्य देवी–देवता की उपासना से उदासीन तथा मन से सदा आत्म चिन्तन परायण रहता है । ऐसे एकान्त और जन समुदाय से दूर शुद्ध देश में रहने का जिसका स्वभाव और विषयासक्त मनुष्यों के समुदाय से उदासीन रहता है ।

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ।।

१३/११ गीता

जिस साधक का मन आत्मज्ञान में सर्वदा लगा रहता है और जीव–ब्रह्म एकत्व रूप सर्वत्र दर्शन करता रहता है, यह सब तो ज्ञान है और जो जीव–ब्रह्म के प्रति भेद भ्रान्ति मन में रखता है और अन्य देवी देवता की उपासना करता है, वह सब अज्ञानी के लक्षण है ।

सद्गुरु उपदेश द्वारा विवेक, वैराग्यादि साधन सम्पन्न अधिकारी 'तत्त्वमसि' महावाक्य द्वारा जो निज आत्मा को ब्रह्म रूप जानने योग्य है, जिसको मैं रूप से अर्थात् आत्मा

रूप से जानकर जीव अपने परमानन्द स्वरूप को प्राप्त होता है, वह तत्त्व आदि व अन्त रहित है अर्थात् अनादि, अनन्त परमब्रह्म जाति, गुण, क्रिया व सम्बन्ध रहित होने से उसे न सत, न असत कहा जा सकता है । इस प्रकार कोई दैवी सम्पदा वाला ही परमात्मा को जानने का अधिकारी हो पाता है ।

परमात्मा साधन साध्य नहीं

मैं ब्रह्म हूँ यह बोध हो जाने के बाद आप को किसी प्रकार की सजातिय, विजातिय वृत्ति के चिन्तन, मनन की कोई आवश्यकता नहीं है । यदि आप को किसी वृत्ति की आवश्यकता पड़ती है कि हमारी वृत्ति सदा ब्रह्माकार बनी रहे, आत्माकार बनी रहे, मन की शान्ति बनी रहे, हमारा मन चंचल न रहे तो यह सब अवस्थाऐं, वृत्तियाँ केवल अन्तःकरण की है । उसके साथ तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं है । तुम्हारे अज्ञानता के कारण तादात्म्य सम्बन्ध बना हुआ है । अगर परिच्छिन्नता में तुम्हारा अहंकार जुड़ा हुआ है तो समझ लेना अभी तुम्हें ब्रह्मज्ञान नहीं हुआ है । आप का ब्रह्मज्ञान वाचिक मात्र है कि मैं द्रष्टा, साक्षी, आत्मा हूँ । अभी तुम्हारी मन में जगत व्यवहार बना हुआ है ।

यदि आपको वेदान्त विचार द्वारा यह सत्य निश्चय हो जावे कि यह सम्पूर्ण अन्तःकरण ही मेरा नहीं है तब तो आप के समस्त दुःखों पर मानों ज्ञान का बम् गोला ही गिर पड़ा है । अब हंसने दीजिये, रोने दीजिये, नाचने दीजिये, गाने दीजिये इस अन्तःकरण को । आप देखेंगे संसार में न कोई वस्तु आपकी है, न व्यक्ति आपका है और न कोई परिस्थिति आपकी है । आप देखेंगे कि जो आज तक आप अपने को समझते थे उनमें से कोई भी आप नहीं है । अन्तमें आप अपने को द्रष्टा,साक्षी, आत्मा रूप में ही पाएगें ।

यह ब्रह्म विचार माला लेकर जपने के चीज नहीं है । यह तुमको मरने के बाद स्वर्ग पहुँचाकर सुखी करने की विद्या नहीं है । यह तो तुम्हारे दैनिक जीवन में अनात्म देह, इन्द्रिय, प्राण, मनादि को मैं आत्मा मानने और आत्मा को अनात्मा मानने के कारण उत्पन्न अध्यास कृत दुःख का मूल नाश करने के लिये है ।

माहात्म्य

जो साधक इस गीता उपदेश सार **'परमात्मा की सहज प्राप्ति'** पुस्तिका का नियमित दोनों समय विचार पूर्वक पाठ करेंगे उन स्वाध्याय करने वालों के उसके द्वारा दिन–रात में हुए समस्त पाप समाप्त हो जावेंगे, इसमें किञ्चित भी सन्देह नहीं ।

वह पूर्ण पवित्र होकर देवताओं के ध्यान का व तीर्थों के स्नान का फल प्राप्त करता है । वह सब धार्मिक अनुष्ठान का करता होकर, सहस्त्रों,प्रणव जाप, गायत्री जाप, महामृत्युन्जय जाप के फल का भागी हो जाता है । वह समस्त, वेद पुराण, ब्रह्मसूत्र, महाभारत, इतिहास के पाठ तथा अध्ययन का फल प्राप्त करता है । उसके द्वारा हुए किसी जन्म में ब्रह्म हत्या, सुरापान, गुरुपत्नी से संभोग, स्वर्ण चोरी, पशु हत्या आदि महान पापों से छूट वह जन्म–मरण चक्र से मुक्त हो जाता है ।

भजन

मुझको कहाँ तू ढूँढे रे भैया मैं तो हूँ तेरे पास में ।
नहीं तीरथ में नहीं मन्दिर में, नहीं एकान्त निवास में ।
नहीं सूरज में नहीं चन्दा में, नहीं पर्वत कैलाश में ।।
मुझको कहाँ तू ढूंढे रे भैया मैं तो हूँ तेरे पास में ।।१।।

नहीं वृन्दावन नहीं अयोध्या, नहीं स्वर्ग वैकुण्ठ में ।
नहीं राम में नहीं कृष्ण में, नहीं भूमि आकाश में ।।
मुझको कहाँ तू ढूँढे रे भैया मैं तो हूँ तेरे पास में ।।२।।

नहीं वेश में नहीं केश में, नहीं संन्यास वैराग्य में ।
नहीं गंगा में नहीं यमुना में, नहीं त्रिवेणी स्नान में ।।
मुझको कहाँ तू ढूंढे रे भैया मैं तो हूँ तेरे पास में ।।३।।

ना मैं जप में ना मैं तप में, ना मैं व्रत उपवास में ।
नहीं पूजन में नहीं ध्यान में, सब श्वाँसों के साथ में ।।
मुझको कहाँ तू ढूँढे रे भैया मैं तो हूँ तेरे साथ में ।।४।।

खोजी होय तुरत मिल जाऊँ, सोऽहम् के विचार में ।
कहत निरन्जन सुनो मेरे भैया,
मैं हूँ साक्षी रूप में ।
मैं हूँ द्रष्टा रूप में ।
मैं हूँ आत्मा रूप में ।
मैं हूँ चेतन रूप में ।
मुझको कहाँ तू ढूंढे रे भैया
मैं हूँ मैं के रूप में ।।
मैं तो हूँ सब रूप में ।

ब्रह्मरूप पहिचानो साधो ब्रह्मरूप पहिचानो रे ।।
कान ब्रह्म नहीं, शब्द ब्रह्म नहिं
कान उसे नहिं सुनता रे ।
ब्रह्म रूप तुम जानो उसको
जो कानों में सुनता रे।। ब्रह्मरूप....

आँख ब्रह्म नहीं, रूप ब्रह्म नहीं
आँखों से नहीं दिखता रे ।
ब्रह्म रूप तुम जानो उसको
जो आँखों में देखत रे।। ब्रह्मरूप....

वाणी ब्रह्म नहीं, मन्त्र ब्रह्म नहीं
जप करी करी हारे रे ।
वाणी जिससे प्रकाशित होती
ब्रह्म कहावत् सोय रे ।। ब्रह्मरूप....

प्राण ब्रह्म नहीं, अपान ब्रह्म नहीं
ध्यान समाधि में नहीं आय रे ।
ब्रह्म रूप तुम जानो उसको
जो प्राणों को चलाता रे ।। ब्रह्मरूप....

मन ब्रह्म नहीं, बुद्धि ब्रह्म नहीं
करत कल्पना हारे रे ।
मन बुद्धि को जो जानत है
ब्रह्म कहावत सोय रे ।। ब्रह्मरूप....

जिस मूरत को सब जग मानत
अरु जिसे ब्रह्म बतावत रे ।
उस मूरत को ब्रह्म न जानो
केन उपनिष जनावत रे ।। ब्रह्मरूप....

कर्ता भाव को बिन त्यागे से
जीव भाव को बिन त्यागे से
देह भाव को बिन त्यागे से ब्रह्म निष्ठा नहीं होय रे ।
कहे निरंजन तू ब्रह्म रूप है छान्दोग्य बतलावे रे ।।
ब्रह्मरूप पहिचानो साधो ब्रह्मरूप पहिचानो रे
सोऽहम् रूप पहिचानो रे।।
शिवोऽहम् पहिचानो रे ।।

काहे रे ! वन खोजन जाई
सर्व निवासी सदा अलेपा,
तोहि संग रहा समाई ।

पुष्प मध्य ज्यों बास बसत है,
मुकुर माहिं जस छाईं ।
तैसे ही हरि बसे निरंतर
घट ही खोजो भाई ।।

बाहर भीतर एक ही जानो,
यह गुरु ज्ञान बताई ।
जन 'नानक' बिन आपा चीह्नें
मिटे न भ्रम की काई ।।

(गुरुग्रन्थ साहिब)